इकाई 24 हाशिए के लोग और उनकी बदलती स्थिति

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- यह समझ पाएंगे कि हाशिए के समुदाय कौन हैं और वे इस स्थिति में कैसे पहुंचे हैं,
- यह जान पाएंगे कि एक समूह के रूप में महिलाएं भी समाज में हाशिए पर हैं,
- समाज के विभिन्न उपेक्षित, हाशिए के समुदायों के बारे में बता सकेंगे जैसे अनुसूचित जाति/जनजाति, महिलाएं और अन्य समूह, और
- हाशिए के समूहों के हितों की रक्षा के लिए मौजूद संवैधानिक प्रावधानों और उनके उत्थान के लिए राज्य द्वारा किए गए उपायों के बारे में बता सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

किसी व्यक्ति को हाशिए का दर्जा आरोपण या अर्जन से मिलता है। कोई व्यक्ति हाशिए का तभी कहलाता है जब अपने समूह के लिए तो वह अनैष्ठिक मगर बाहर के लिए नैष्ठिक या अनुवर्ती बन जाता है। इसके कारण हाशिए का व्यक्ति एक सामाजिक या सांस्कृतिक परिवेश विशेष में दोहरा जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाता है। कोई जनसमूह सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से समाज के बाहरी छोर पर रह रहा हो तो इसका अर्थ है कि वह उन सब विशेषाधिकारों या लाभों से वंचित है जो समाज की मुख्यधारा में स्थित समूहों को प्राप्त है। इसलिए एक उपेक्षित या हाशिए का समूह कई तरह की वंचनाओं का शिकार बनता है। इन वंचनाओं के अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक पहलू हो सकते हैं। उपेक्षित या हाशिए के समूह को समाज के विभिन्न संसाधन उसकी मुख्य धारा में स्थित अन्य समूहों की तुलना में काफी कम सुलभ हो पाते हैं।

24.2 अनुसूचित जातियां

भारतीय समाज अनेक जातियों या उपजातियों में बंटा है जिनकी संख्या हजारों में है। मगर मोटे तौर पर हम जातियों की तीन श्रेणियां ही जानते हैं: 1) द्विज या सवर्ण, 2) मध्यवर्ती जातियां, जिन्हें साधारणतया हम पिछड़ी जातियों की संज्ञा देते हैं, और 3) छोटी जातियां, जिन्हें पहले अछूत कहा जाता था।

जातियों को एक आनुष्ठानिक क्रम-परंपरा में श्रेणीबद्ध किया गया है। इस क्रम-परंपरा के शीर्ष पर विराजमान ऊंची जातियां मुख्य या प्रबल जातियां थीं। यहां पर हम हाशिए की जातियों की उत्पत्ति पर चर्चा नहीं करेंगे। बल्कि यहां हम अपनी चर्चा को इस बात तक सीमित रखेंगे कि भारतीय समाज के इतिहास के किसी दौर में अछूत जातियां ऐसे काम-धंधों में लगी थीं जो समाज की दृष्टि में हेय और पतित कार्य माने जाते थे जैसे मृत पशुओं को ढोना, चमड़ा कमाना, साफ-सफाई का काम करना और श्मशान घाटों में चांडाल का काम करना। ये जातियां शारीरिक श्रम करने वाले कमेरों, मजदूरों, सेवकों, दासों, चौकीदारी इत्यादि का काम करती थीं। इनकी बस्ती गांव से एकदम अलग होती थी। ये जातियां हालांकि सभी तरह के हाथ-के काम किया करती थीं, लेकिन चाहे वह गांव हो या नगर, समाज के लिए वे अपरिहार्य थीं, उसका अनिवार्य अंग थीं। अछूत जातियों को हाशिए की जातियों की संज्ञा उनके पेशों से जुड़े निम्न पारितोषिक और प्रतिष्ठा और फलस्वरूप उनकी वंचना को देखते हुए दी गई है। आम तौर पर आमदनी, स्वास्थ्य, शिक्षा और सांस्कृतिक संसाधनों के मामले में भी वे सबसे नीचे होती हैं। मगर निम्न जातियों को कहीं अछूत माना जाता है, तो कहीं नहीं। जैसे धोबी या तेली को भारत में एक भाग में अछूत समझा जाता है तो दूसरे में नहीं।

अनुसूचित जातियों को उपेक्षित, हाशिए के समूह के रूप में देखा जाना हमारा ध्यान उन पर थोपी गई अनेक किस्म की अशक्तताओं की ओर खींचता है। मगर यहां यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि अछूत जातियों पर अशक्तताओं की जो सूची लागू होती है, वह किसी एक जगह के चलन को नहीं दर्शाती। समूचे भारत में हाशिए की जातियों पर जो-जो अशक्तताएं थोपी गई हैं इससे हमें उनकी पूरी जानकारी ही नहीं मिलती, बल्कि यह एक सूची-पत्र है जो इस या उस जगह में प्रचलित अस्पृश्यता से जुड़ा है। ये अशक्तताएं इस प्रकार हैं:

i) सार्वजनिक सुविधाओं जैसे कुओं, स्कूलों, रास्तों, डाकघर और अदालतों में जाने की मनाही।

ii) मंदिरों और उनसे जुड़ी धर्मशालाओं या पीठों में जाने की मनाही क्योंकि उनकी

उपस्थिति से देवी-देवता और उनके सवर्ण उपासक अपवित्र हो जाएंगे। अछूतों या शूद्रों को संन्यासी बनने और वेदों का ज्ञान हासिल करने की अनुमति नहीं थी।

iii) उन्हें किसी भी तरह के प्रतिष्ठित और लाभप्रद रोजगार से बाहर रखा जाता था और वे मलिन या हाथ से किए जाने वाले काम ही कर सकते थे।

iv) आवसीय पार्थक्य अन्य समूहों के मुकाबले उनके मामले में अधिक कठोर था। वे गांव के बाहरी छोर पर ही घर बना सकते थे। उन्हें धोबी और नाई की सेवाएं भी नहीं दी जाती थीं। चाय और खाने-पीने की दुकानों में वे नहीं जा सकती थीं। या फिर उनके लिए बर्तन अलग रखे जाते थे।

v) उनकी जीवन शैली पर भी वर्जनाएं थोपीं गईं थीं। विशेषकर वे अच्छी चीजों का वस्त्रों का उपयोग नहीं कर सकती थीं। कई इलाकों में घुड़सवारी करना, साइकिल चलाना, छाता, जूता-चप्पल का प्रयोग, सोने-चांदी के आभूषण पहनना, दूल्हे को डोली-पालकी में ले जाना भी उनके लिए मना था।

vi) ऊंची जातियों के सामने बोलते, उन्हें संबोधित करते, बैठते और खड़े होते समय उन्हें आदर देना अनिवार्य था।

vii) चलने-फिरने पर पाबंदी। अछूतों को ऊंची जातियों के घरों या व्यक्तियों से एक निश्चित दूरी बनाकर ही रास्तों पर चलने दिया जाता था।

viii) ऊंची जातियों के लिए बेगार करना और उनकी सेवा-चाकरी के काम करना।

24.2.1 अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता

अनुसूचित जातियां कितनी गतिशील हैं, इसे हम कुछ आनुभवजन्य आंकड़ों की रोशनी में समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जातियों साक्षरता 1961 में 10 प्रतिशत थी जो 1991 में बढ़कर तक 37 प्रतिशत हो गई। स्कूलों में उन लोगों के नामांकन में भी 1981 और 1991 के बीच दोगुना वृद्धि हुई है। सरकारी कार्यालयों और प्रशासन में अनुसूचित जाति के कर्मचारियों की संख्या 1956 में 2,12,000 थी, जो 1992 में 6,00,000 पाई गई। सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में नियुक्त अनुसूचित जाति के लोगों की संख्या 1970 में 40,000 से बढ़कर 1992 में 3,69,000 पाई गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों में गरीबों की संख्या 1983-84 में 58 प्रतिशत थी, जो 1987-88 में 50 प्रतिशत हो गई।

अनुसूचित जातियों में सामाजिक बदलाव और गतिशीलता का एक और संकेत हमें देहाती और शहरी समाज में जातिगत तनावों और संघर्षों से मिलता है। अनुसूचित जाति के लोगों के खिलाफ होने वाली हिंसा के मूल में उनका पेशा है। भेदभावपूर्ण जातिगत रीति-रिवाजों के अनुसार उन्हें घृणित काम करने होते थे, जैसे उन्हें मरे पशुओं को निबटाना होता था, उनसे दाई और बेगार जैसे काम लिए जाते थे। मगर वे अब इन कामों को छोड़ने लगे हैं। बल्कि वे खुलकर सवर्णों की अवज्ञा करने लगे हैं और सार्वजनिक स्थलों जैसे कुओं, मार्गों, मंदिरों के प्रयोग या प्रवेश को लेकर उन पर जो भी वर्जनाएं थोपी गई थी, वे उन्हें तोड़ रहे हैं। वयस्क मताधिकार मिलने के कारण उनमें राजनीतिक जागरूकता का संचार हुआ है और आत्म-सम्मान की भावना जागी है। अनुसूचित जाति के व्यक्ति से बंधुआ मजदूरी या बेगार नहीं कराया जा सकता। इसी प्रकार अब उन्हें उनके घरों और जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता। इन्हीं सब कारणों से जातिगत तनावों और संघर्षों की स्थिति बन गई है।

दबंग जातियां इन जातियों से अपने परंपरागत शोषणात्मक संबंधों पर आश्रित रही हैं और जब कभी अनुसूचित जातियां मौजूदा संबंधों को चुनौती देती हैं, तो वे भड़ककर हिंसा पर आमादा हो जाती हैं। इन जातियों के लोगों की संपत्ति जबरिया हथियाना, इनकी औरतों के

साथ बलात्कार करना और उन्हें बेचना, उन्हें जलाना और उनकी हत्या करना, ये सभी घटनाएं उनके खिलाफ होने वाली हिंसा के उदाहरण हैं।

जातिगत हिंसा अनुसूचित जातियों की सामाजिक गतिशीलता की अभिव्यक्ति है, जो हमें देहातों में अधिक देखने को मिलती है। मगर शहरों में हमें ऐसा कम देखने को मिलता है, जिसका कारण यह है कि वहां शिक्षा, पंथ-निरपेक्ष रोजगार, आर्थिक और प्रौद्योगिकीय बदलावों के जरिए आधुनिकीकरण और सामाजिक विकास ज्यादा हुआ है।

अनुसूचित जातियों की सीमांत या हाशिए की स्थिति में सुधार की बात महात्मा ज्योतिबा फुले, डा. भीमराव अम्बेडकर जैसे अनेक समाज सुधारक नेताओं के योगदान का उल्लेख किए बिना अधूरी रहेगी। अम्बेडकर की विचारधारा मुख्यत: सामाजिक समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की विचारधारा थी। उनका मानना था कि वर्ण-व्यवस्था में व्याप्त सामाजिक असमानता को दूर करके ही हम ये लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। हाशिए की जातियों को पतित और उन्हें अमानवीय बनाने वाले समाज को आमूल बदल डालने के लिए इन्होंने विरोध आंदोलन छेड़ा। उनका मानना था कि अछूत जातियों को भी सामाजिक समानता का अधिकार मिलना चाहिए। अम्बेडकर के विचार से निम्न जातियों की समानता को सामाजिक-राजनैतिक, धार्मिक और अवसरों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए, जहां यह अत्यधिक असमानता के विरोध में खड़ी होती है। दूसरे शब्दों में अम्बेडकर की दृष्टि में असमानता सापेक्षिक होती है।

24.2.2 समानता और सामाजिक न्याय

इसी प्रकार अम्बेडकर की नजर में न्याय का अर्थ किसी भी व्यक्ति के साथ न्यायोचित ढंग से व्यवहार किया जाना है, जिसका समाज में वह अधिकारी है। उनके अनुसार अनुसूचित जातियों को समानता और न्याय मिले, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ विशेष रणनीतियां अपनाई जानी चाहिए: (i) राज्य का हस्तक्षेप और (2) दलित-शोषित जातियों के विरोध आंदोलन। राज्य के हस्तक्षेप की दिशा में उन्होंने भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने छुआछूत के खिलाफ आंदोलन छेड़ा और दलितों की एक पंथनिरपेक्ष पार्टी बनाई। वे महिलाओं की स्थिति में भी सुधार लाने के पक्षधर थे। दरअसल वे स्त्री और पुरुष दोनों को समान मानते थे। उनकी यह विचारधारा भारतीय संविधान के उन तमाम प्रावधानों में झलकती है जो महिलाओं के समान अधिकारों के लिए किए गए हैं। उन्होंने 1942 में दलित महिलाओं का आह्वान किया था कि अपने जीवन स्तर को सुधारने के लिए संगठित हों। महिलाओं के वैवाहिक, तलाक और संपत्ति के उत्तराधिकार संबंधी अधिकारों की रक्षा के लिए उन्होंने 1951 में संसद के पटल पर हिन्दू संहिता विधेयक रखा। उनके छुआछूत विरोधी आंदोलन और देश में चल रहे दलित आंदोलनों को उनके समर्थन के फलस्वरूप संसद ने अस्पृश्यता (अपराध) निरोधक अधिनियम, 1955 पारित किया। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कल्याण, उनकी रक्षा और विकास के लिए सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाने में भी अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण योगदान किया।

24.3 अनुसूचित जनजातियां

भारत में अनुसूचित जनजातियां या आदिवासी सदियों से समाज की मुख्य धारा से अलग-थलग रही हैं। हालांकि नृवैज्ञानिक अध्ययन बताते हैं कि आदिवासी हाशिए के लोग तो जरूर रहे हैं, मगर वे उपेक्षित या हाशिए में नहीं रहे हैं। आदिवासी लोग तरह-तरह की आर्थिक क्रिया-कलापों में लगे थे, जैसे भोजन संग्रहण, पशु चारण, झूम खेती, हस्तशिल्प इत्यादि। आदिवासियों के हाशिए पर जाने की समस्या तब से आरंभ हुई जब उन्हें अपने जीवन आधार जंगल, चरागाहों और कृषि भूमि से हटाया जाने लगा। आदिवासी लोग

परंपरागत रूप से वनों और वन-उत्पादों का दोहन किया करते थे। मगर आदिवासी क्षेत्रों में सरकारी सत्ता के उत्तरोत्तर हस्तक्षेप और वन और वन उत्पादों के दोहन पर वन विभाग के अधिकारियों के बढ़ते नियंत्रण के कारण आदिवासियों के लिए घोर कठिनाइयां उत्पन्न होने लगीं। सबसे बड़ी समस्या व्याववायिक उपयोग के लिए वनों के अंधाधुध कटान से पैदा हुई। सरकार ने जहां-कहीं की वनीकरण के लिए हस्तक्षेप किया, वह इस तरीके से किया कि जिससे वन उत्पाद सिर्फ बाहरी उद्योगों या शहरी इलाकों की जरूरतों की पूर्ति करें। तिस पर सरकार द्वारा प्रायोजित वनीकरण कार्यक्रम में जिन किंस्म के वृक्ष लगाए गए उनकी आदिवासियों के लिए कोई उपादेयता नहीं थी।

24.3.1 हाशिए में आदिवासी

आदिवासियों को समाज के हाशिए में धकेलने की प्रक्रिया को बाहरी सूदखोरों ने और तेज किया। उनके कर्ज में डूबने के कारण ही आदिवासियों को जबरिया बंधुआ मजदूरी के लिए विवश होना पड़ा या अपनी जमीन खोनी पड़ी। अनुसूचित जनजातियों को हाशिए में धकेलने की इस प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझने के लिए हमें स्वतंत्रता से पहले के काल पर दृष्टिपात करना होगा। अंग्रेज शासकों ने पृथक्करण की नीति अपनाकर आदिवासियों की भारतीय समाज से अलग-थलग रखने की चेष्ठा की। इस पृथक्करण के फलस्वरूप सूदखोर महाजनों और ठेकेदार जैसे गैर-आदिवासी तबकों को आदिवासियों का शोषण करने का मौका मिला। यह पृथक्करण ब्रिटिश शासकों के लिए आदिवासी क्षेत्रों की विपुल प्राकृतिक संपदा का दोहन करने में बड़ी सहायक सिद्ध हुआ। सो ब्रिटिश शासकों ने इन क्षेत्रों को पृथक रखने के लिए समय-समय पर कानून भी बनाए। वेरियर एल्विन जैसे नृविज्ञानी ने भी पृथक्करण की इस नीति को सही ठहराते हुए कहा कि आदिवासियों और गैर-आदिवासियों में न्यूनतम संपर्क हो। इस नीति ने एक ओर गैर-आदिवासियों द्वारा, तो दूसरी ओर राज्य द्वारा आदिवासियों को शोषण का बढ़ावा दिया। इस पृथक्करण ने आदिवासी समूहों में शेष भारत के प्रति अलगाव की भावना पैदा की।

24.3.2 आदिवासी और जंगल

आदिवासी लोगों का अनादिकाल से वनों से घनिष्ठ संबंध रहा है, जो वन उत्पादों के दोहन और वन्य प्राणियों के आखेट पर निर्भर रहे हैं। मगर 19वीं सदी के मध्य से बाहरी लोगों की वनों में घुसपैठ शुरू हो गई और धीरे-धीरे सारी स्थिति ही बदल गई। फिर 1894 में ब्रिटिश सरकार ने वनों के संचालन के लिए नीति लागू की, जिसके तहत आदिवासी लोगों पर वनों और वन उत्पादों के उपभोग पर कुछ प्रतिबंध लगा दिए गए। स्वतंत्रता के बाद 1952 में भारत सरकार ने 1894 की वन नीति की समीक्षा कर, और कठोर प्रतिबंध थोप दिए। इससे आदिवासियों के जीवन और उनकी अर्थ-व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा। इस नीति से खासकर वे आदिवासी अधिक प्रभावित हुए जो मूलत: कृषि पर आश्रित तो नहीं थे, मगर रहते वे जंगलों के समीप थे। फिर खेती-बाड़ी के लिए वनभूमि के बढ़ते प्रयोग से भी आदिवासियों की समस्याएं बढ़ीं। इस नीति के चलते कई आदिवासी समुदायों और वन अधिकारियों के बीच तनाव पैदा हुआ।

पिछले कुछ वर्षों में आदिवासियों से जंगल और जमीन दोनों बड़ी तेजी से छिने गए हैं, जिन पर परंपरागत रूप से उन्हीं का स्वामित्व रहा है। जीवन के निर्वाह के लिए जंगल और जमीन के उपयोग का उनका परंपरागत हक भी उनसे छीना जा रहा है। इसलिए निर्धनता, भुखमरी, कर्जदारी और बढ़ती भूमिहीनता उनमें काफी ज्यादा देखने को मिल रही है। यह समस्या पूर्वोत्तर में कम मगर मध्य भारत के आदिवासियों में अधिक है। हालात ऐसे बन गए हैं कि आदिवासी लोग या तो उसी जमीन के पट्टेदार किसान हो गए हैं या उसी जमीन में खेतिहार मजदूर बन काम कर रहे हैं जिस जमीन के कभी वे स्वामी थे। देश के कुछ खास अंचलों में आदिवासियों के बीच सामाजिक और राजनैतिक विद्रोह की

जो घटनाएं हो रही हैं उनके मूल में भूमि से इनका बेदखल होना और उसके फलस्वरूप होने वाली वंचना है।

आदिवासियों में खासकर उन समुदायों को वनों के विनाश के लिए दोषी ठहराया जाता है जो वृक्षों को काटकर झूम खेती करते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वन क्षेत्र का घटता दायरा भारत में आम बात हो गई है। वनों के विनाश को आदिवासियों के मत्थे मढ़ना सरासर गलत होगा। बल्कि वास्तविकता यह है कि आदिवासियों के नियंत्रण में वन आज से पहले कहीं ज्यादा सुरक्षित थे। जब से गैर-आदिवासियों ने वनों का व्यावसायिक दोहन शुरू किया तभी से आदिवासी लोग अपने जीवन आधार से वंचित होते गए हैं।

अनुसूचित जनजातियों को हाशिए की स्थिति में लाकर खड़ा करने के लिए एक और समस्या जिम्मेदार है। गुजारा अर्थव्यवस्था होने के कारण आदिवासी लोगों को जब भी कोई आर्थिक संकट आ पड़ता है तो उन्हें उसके लिए गैर-आदिवासी महाजनों पर आश्रित रहना पड़ता है। ऐसे में जब कोई व्यक्ति सूदखोर महाजन या जमींदार से कर्ज लेता है तो उसे कर्ज की शर्तों के अनुसार साहूकार के यहां बंधुआ मजदूरी या बेगार करना पड़ता है। कोई आदिवासी अगर समय पर कर्ज नहीं चुका पाता है तो वह कर्ज उसके बेटे या फिर आगे की पीढ़ियों को चुकाना पड़ता है।

पीपुल ऑव इंडिया (भारत के लोग) नामक परियोजना के अंतर्गत संकलित आंकड़ों के अनुसार वन और वन्य प्राणियों के विनाश के साथ-साथ आखेट और भोजन संग्रहण करने वाले आदिवासियों की संख्या लगभग 44 प्रतिशत कम हो गई है। जो लोग पक्षियों और पशुओं को फंसाने वाले बहेलियों का काम करते थे उनकी संख्या में 47 प्रतिशत कमी आ गई है। इसी प्रकार पशुचारण का काम करने वाले गोपालों, गडरियों की संख्या 32 प्रतिशत, तो झूम खेती करने वाले आदिवासियों की संख्या 33 प्रतिशत कम हो गई है। शोधकार्यों से पता चलता है कि आदिवासी लोग अपने पारंपरिक पेशों को छोड़कर बागवानी, पशुपालन इत्यादि अपना रहे हैं। इसके अलावा वे कृषि और उद्योग में दिहाड़ी मजदूरी कर रहे हैं। कपड़े की कताई जैसे उनके कई पारंपरिक हस्तशिल्प सिर्फ पूर्वोत्तर भारत को छोड़कर सभी जगह लुप्त हो गए हैं। आदिवासी लोग हालांकि आज भी मूलत: खेती-बाड़ी करने वाले समुदाय हैं, लेकिन इनमें भूमिहीन और खेतिहर मजदूरों की तादाद बढ़ती जा रही है। आदिवासी और गैर-आदिवासी अंचलों की तुलना अगर संस्थागत और ढांचागत सुविधाओं की कसौटी पर करें तो आदिवासी अंचलों में हमें विकास नजर नहीं आता। सापेक्ष दृष्टि से भी देखें तो गैर-आदिवासी क्षेत्रों की तुलना में आदिवासी क्षेत्रों में प्राइमरी स्कूल, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र और पेयजल के साधन काफी कम सुलभ हैं।

24.3.3 भारत में जनजातीय विकास

सन् 1947 में स्वतंत्रतता मिलने पर नए संविधान की रचना हुई जिसके बाद पार्थक्य की सरकारी नीति को बदल दिया गया। यह स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान आदिवासियों से किए गए वादे के अनुरूप था। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी और अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने आदिवासियों को अलग रखने की ब्रिटिश शासकों की नीति को आड़े हाथों लिया था। स्वतंत्र भारत में अपनाई गई नई जनजातीय नीति का मुख्य लक्ष्य आदिवासियों को भारतीय समाज की मुख्यधारा में शामिल करना था। अनुसूचित जनजातियों के लिए भारतीय संविधान में किए गए प्रावधानों का उद्देश्य कानूनी व प्रशासनिक उपायों के जरिए आदिवासियों के हितों की रक्षा करना और उनके जीवन स्तर को सुधारने के लिए उनकी आर्थिक स्थिति को उन्नत बनाना था।

भारत सरकार ने जनजातीय विकास की दिशा में तीन कार्यों की प्राथमिकता को जाना: (क) आदिवासी और गैर-आदिवासी समुदायों के बीच संवादहीनता को कम करना ताकि राष्ट्रीय एकता को मजबूती मिले, (ख) आदिवासियों के जीवन-आधार तंत्र की रक्षा करना

जिससे वे सामूहिक रूप से विकास और राष्ट्रीय चुनौतियों का सामना कर सकें और (ग) आदिवासियों की तात्कालिक जरूरतों को पूरा करना ताकि विकास की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संविधान में तीन रणनीतियां अपनाई गई: (i) पांचवीं अनुसूची ने आदिवासी अंचलों के प्रशासन के लिए आवश्यक उपायों की रूपरेखा दी, (ii) आदिवासी बहुल प्रदेशों के प्रशासन के लिए छठी अनुसूची रखी गई। इस अनुसूची में स्वायत्त जिला परिषदों की स्थापना का प्रावधान रखा गया जो भूमि और वनों के प्रबंध, झूम खेती, मुखियों की नियुक्ति संपत्ति के उत्तराधिकार, विवाह और तलाक, सामाजिक रीति रिवाज और गांव के प्रशासन जुड़े किसी भी विषय पर नियम-कानून बना सकती है। (iii) संविधान का अनुच्छेद 275 अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और अनुसूचित क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों का प्रबंध करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 46 में आदिवासी लोगों के शैक्षिक और आर्थिक विकास और उन्हें सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय और शोषण से बचाने का प्रावधान किया गया है।

आर्थिक विकास ने जो धारा पकड़ी वह हमें आदिवासियों की उपेक्षा के साथ-साथ उनकी सामाजिक गतिशीलता की एक मिली-जुली तस्वीर दिखाती है। असल में औद्योगिक खनन क्षेत्र में जो-जो विकास परियोजनाएं चलाई गई हैं, उन्होंने अभी तक अनुसूचित जनजातियों पर प्रतिकूल प्रभाव ही डाला है। इन बड़ी विकास परियोजनाओं के चलते आदिवासियों को अपनी जमीन से जबरिया बेदखल होना पड़ा है। विकास का जो बाहरी नजरिया है वह आदिवासियों की भूमि के अधिग्रहण को राष्ट्रीय हित के लिए जरूरी मानता है। इसलिए आदिवासियों के विस्थापन की कीमत को तुच्छ माना जाता है, जिसके लिए उन्हें मुआवजा देना ही पर्याप्त समझ लिया जाता हैं।

आदिवासियों को वंचना, उपेक्षा और हाशिए की स्थिति से उबारने में सहायक अगर कोई उल्लेखनीय विकास हुआ है, तो सिर्फ शिक्षा के क्षेत्र में। आदिवासियों में साक्षरता का स्तर 1971-81 के दशक में 32 प्रतिशत तक बढ़ता देखा गया। प्राथमिक पाठशालाओं में आदिवासी बच्चों का नामांकन भी बढ़ा है हालांकि उनमें स्कूल छोड़ने की दर भी उतनी ही ज्यादा देखी गई है। शिक्षा के फलस्वरूप उनमें एक ऐसा छोटा सा समूह उभरा है, जो सरकार की प्रशासनिक प्रणाली का हिस्सा बन गया हैं। शिक्षा के माध्यम से आदिवासी लोग बाहरी दुनिया के संपर्क में आए है, जो अपनी मांगों को प्रकट करने और जनमत को अपने पक्ष में करने में उनके लिए सहायक साबित हो रहा है।

24.3.4 जनजातियों की दशा का एक उदाहरण

झारखंड में उपेक्षित और हाशिए के आदिवासी लोगों का वृतांत कुछ इस प्रकार है:

यह एक दूर-दराज का एक आदिवासी बहुल गांव है। इसे बाहरी दुनिया से जोड़ने के लिए न तो कोई रेलवे लाइन है और न ही कोई मोटर सड़क। बस से उतरने के बाद आपको उस गांव तक पहुंचने के लिए मीलों पैदल चलना पड़ता है।

इसी प्रकार सभ्य दुनिया तक पहुंचने के लिए उन्हें भी मीलों पैदल चलना पड़ता है जहां पहुंचकर वे अपने वन उत्पादों को बेचते हैं। इन आदिवासियों को हाशिए की स्थिति से उबारने के लिए राज्य सरकार ने गांव को सड़क से जोड़ने का फैसला किया। पर जैसे ही सरकारी सर्वेक्षण दल गांव पहुंचा तो गांव वालों ने उन्हें वहां से भगा दिया। कुछ समय बाद सर्वेक्षण दल पुलिस को लेकर गांव दुबारा पहुंचा। इस बार गांव वालों का विरोध पहले से कम उग्र था, लेकिन सर्वेक्षण दल को तब भी उलटे पैर लौटना पड़ा। इस दल में एक संवेदनशील और जिज्ञासु इंजीनियर भी था। उसने आदिवासियों के गुस्से और विरोध का कारण जानने का निश्चय किया कि आखिर वे संपर्क मार्ग के निर्माण के खिलाफ क्यों हैं।

वह इंजीनियर आदिवासी गांववालों से बातचीत करने में सफल रहा है। इससे उस बड़ी रोचक जानकारी मिली।

असल में आदिवासी लोग गांव में पक्की सड़क इस डर से नहीं चाहते थे कि इससे बाहर के व्यापारी और ठेकेदार उन्हें वन उत्पादों से वंचित कर देंगे। व्यापारी और ठेकेदार की उपस्थिति से हिंसा की घटना हमेशा बढ़ जाती है। भला गांव के लोग शहरी लोगों के हाथों अपना शोषण किस तरह सहन कर सकते हैं। गांव वालों का कहना था कि सड़क के आने से उन पर दीक्कू (बाहरी) लोगों का राज आ जाएगा। इस उदाहरण से हमें सड़क और बाहरी लोगों के शोषणात्मक राज के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध का पता चलता है जिसे साधारण आदिवासी इतनी सहजता से देखता है कि विकास के नाम पर की जाने वाली कोई भी पहल उसे खतरे का संकेत देती है।

बोध प्रश्न 1

1) अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता पर पांच पंक्तियों में एक संक्षित टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

2) स्वतंत्र भारत में आदिवासियों के विकास पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

24.4 भारत में महिलाएं

महिलाओं को भी हाशिए के समूह के रूप में देखा जा सकता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि भारत में महिलाओं की स्थिति को हमेशा भेदभाव की नजर से नहीं देखा गया है। अक्सर ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन काल में स्त्री और पुरुष दोनों को समाज में समान स्वतंत्रता, भागीदारी हासिल थी। वैदिककालीन वृतांत हमें बताते हैं कि स्त्री-पुरुष किस तरह गुरुकुल में साथ-साथ शिक्षा अर्जित करते थे। कई महिलाओं को तो वेदों का विशारद ज्ञान हासिल था। अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता भी महिलाओं को प्राप्त थी। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी स्त्री-पुरुष बराबर के भागीदार थे। महिलाएं अपने घर-परिवार की चारदीवारी के दायरे तक सीमित नहीं थी। बल्कि वे सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में भी गमन कर सकती थी। विवाहित युगल को दंपति कहा जाता था जिसका अर्थ यही होता है कि पति-पत्नी घर के संयुक्त स्वामी होते हैं। इस सब का संबंध प्राचीन भारत से है। आज की स्थिति से उसका कोई संबंध नहीं है, जिसमें महिलाएं सामाजिक रूप से अलग-थलग पड़ी हैं, जिन्हें सामाजिक लिंग समानता प्राप्त नहीं है। आज महिलाएं हाशिए में है क्योंकि उन्हें पुरुषों के समान सत्ताधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं। सामाजिक क्रम-परंपरा में

उन्हें निम्न श्रेणी में रखा जाता है। घर तथा बाहर निर्णय प्रक्रिया में उसकी भागीदारी बहुत सीमित है। स्त्री की छवि अबला, भीरू और भावुक प्राणियों के रूप में प्रस्तुत की जाती है। इसके बिल्कुल उलट, पुरुषों को बलिष्ठ, साहसी और विवेकशील समझा जाता है। महिलाओं की ऐसी छवि उनके दैनिक व्यवहार को प्रभावित तो करती ही है बल्कि समाज के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में महिलाओं की असहभागिता को औचित्य भी प्रदान करती है। जीवन के विशेषाधिकारों और लाभों को अगर स्त्री-पुरुष में बांटा जाए तो एक वृत्त के रूप में हमारे सामने समाज की जो तस्वीर उभरती है, उसमें महिलाएं उसके हाशिए पर मिलती हैं।

24.4.1 हाशिए पर महिलाएं

मादा भ्रूण-हत्या और शिशु-हत्या की उच्च दरं से स्पष्ट हो जाता है कि महिलाएं भी उतनी ही उपेक्षित और वंचित हैं जितने कि हाशिए के अन्य समुदाय। जनांकिकीय आंकड़ों से हमें पता चलता है कि आयु-विशेष मृत्युदर में 35 वर्ष तक हर आयु वर्ग में मरने वाली स्त्रियों की संख्या पुरुषों से हमेशा अधिक रहती है। लड़कियां कुपोषण की शिकार भी लड़कों से अधिक होती हैं। यह सिलसिला उनके वयस्क होने और फिर आगे की पीढ़ी तक चलता है। मातृ मृत्युदर भारत में बहुत ज्यादा है। भारतीय परिवारों में लड़की को पौष्टिक आहार देने का चलन नहीं हैं और वह जब कभी बीमार पड़ती है तो उसकी चिकित्सा और देखभाल सही ढंग से नहीं की जाती है। किशोरावस्था में उसकी विशेष पोषणात्मक जरूरत पर भी ध्यान नहीं दिया जाता है। कुपोषण की यह दशा उसे गर्भावस्था और शिशु जनन के दौरान जटिलताओं और मृत्यु की ओर धकेलता है। लड़कों का वृद्धि-विकास तो पूरा होता है मगर लड़कियां उनकी तरह विकसित नहीं हो पाती हैं। उनका विवाह कच्ची उम्र में कर दिया जाता है जिससे वे अपने पति के घर में भेदभाव पूर्ण बर्ताव के चक्र में फिर से फंस जाती है और इस तरह पितृसत्ता की संतत पराधीन बनी रहती हैं।

महिलाएँ एक उपेक्षित समूह है। फिर भी इनके स्तर में बदलाव हो रहा है।
साभार: किरणमई बुशी

24.4.2 महिलाओं के उत्थान के प्रयास

स्वतंत्रता के बाद भारत में दो महत्वपूर्ण नीवें पड़ी, जिनके चलते ऐसे परिवर्तन आए हैं, जो परिवार के भीतर और बाहर महिलाओं को हाशिए की स्थिति से उबारने में बड़े सहायक रहे हैं। ये इस प्रकार हैं:

i) औपचारिक समानता की संवैधानिक गारंटी

ii) राज्य द्वारा प्रायोजित सामाजिक कल्याण कार्यक्रम

महिलाओं के उत्थान में ये उपाय कितने सार्थक और प्रासंगिक हैं यह जानने के लिए आइए इन पर संक्षेप में कुछ चर्चा की जाए।

i) संविधान सामाजिक-लिंग समानता की गारंटी देता है। संविधान का अनुच्छेद 14 कानून की दृष्टि में सभी को समानता प्रदान करता है, तो अनुच्छेद 15 किसी भी तरह के भेदभाव को वर्जित करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 16(I) देश के सभी नागरिकों को रोजगार या राज्य के पदों में नियुक्ति के मामले में समान अवसर की गारंटी देता है। संविधान में 14 वर्ष की उम्र तक सभी बच्चों की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। इसके अलावा पुरुष और महिला दोनों के लिए आजीविका के पर्याप्त साधन समान रूप से मुहैय्या कराने, समान कार्य के लिए समान वेतन और मातृत्व राहत-लाभ के प्रावधान भी किए गए हैं। वयस्क मताधिकार से महिलाएं भी मतदाता बन गई हैं। हिन्दू कानून के अंतर्गत महिलाओं को तलाक और पुनर्विवाह का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार उत्तराधिकार अधिनियम महिलाओं को अपने पिता की संपत्ति में बराबर का हिस्सा देता है।

ii) राज्य द्वारा प्रायोजित समाज कल्याण: भारत सरकार ने 1953 में महिला कल्याण और वंचित समूहों के विकास के लिए केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की। इस बोर्ड ने अनेक महिला संगठनों के विकास को बढ़ावा दिया, जिससे सामाजिक और राजनैतिक महिला कार्यकर्ताओं का उदय हुआ। यहां यह बताना जरूरी है कि 1960 के दशक और 1970 दशक आरंभ में अमेरिका और यूरोप में हुए नारी अधिकारवादी या नारी मुक्ति आंदोलन ने पूरे विश्व में नारी की हाशिए की स्थिति और उसके प्रति बरते जा रहे भेदभाव के बारे में जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन आंदोलनों के योगदान का महत्व इसलिए भी है कि इन्होंने महिलाओं के निकृष्ट जीवन से जुड़े बुनियादी सवालों और मांगों को उठाया। इन आंदोलनों ने नारी की अनुभूतियों को एक नई दृश्यमानता प्रदान की और उनकी विशिष्ट समस्याओं और चिंताओं को उजागर किया। महिलाओं की स्थिति को सुधारने की दिशा में हुए विश्व प्रयासों को संयुक्त राष्ट्र संघ से भी जबर्दस्त समर्थन मिला। राष्ट्र संघ ने 1975 वर्ष को महिला वर्ष और 1975-85 को महिला दशक घोषित किया। इस अवधि के दौरान महिलाओं से जुड़े मुद्दों को अभूतपूर्व तरीके से अंतरराष्ट्रीय पैमाने पर उठाया गया। राष्ट्र संघ ने घोषणा की कि "महिलाओं के प्रति भेदभाव समान अधिकार और मानव गरिमा के प्रति आदर के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।" इस भेदभाव को देशों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की पुरुषों की बराबरी में भागीदारी में अवरोधक बताया गया। यह कहा गया कि भेदभाव समाज और परिवार के विकास को अवरुद्ध करता है और महिलाओं की क्षमताओं को पूरी तरह से विकसित नहीं होने देता। यह स्पष्ट रूप से समझा गया कि किसी भी देश के सर्वांगीण विकास के लिए जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों के बराबर होना बेहद जरूरी है।

24.4.3 महिला कल्याण नीतियां

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की दशा को लेकर बढ़ती चिंता और जागरूकता के मद्देनजर भारत सरकार ने भी महिला कल्याण के लिए प्रगतिशील नीतियां अपनाई और विषयक अध्ययनों को प्रोत्साहन दिया। इस दिशा में उसका सबसे बड़ा उल्लेखनीय कदम 1971 में महिलाओं की स्थिति पर समिति का गठन था। इस समिति ने समानता के सिद्धांत के प्रति सामाजिक रुझानों और प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करते हुए महिलाओं के उत्थान के

लिए उपाय सुझाएं। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1974 में प्रस्तुत की जिसका शीर्षक था: *समानता की ओर*। रिपोर्ट ने महिलाओं की पराधीनता के कारणों पर प्रकाश डाला और जाति, वर्ग और सामाजिक-लिंग सोचजन्य असमानता के प्रकाश में उनके शोषण की विशद व्याख्या दी। इसके बाद स्वातंत्र्योत्तर भारत में पहली बार महिलाओं की स्थिति और जीवन दशा पर अध्ययनों की बाढ़ सी आ गई। इन अध्ययनों में विभिन्न विद्वानों ने बताया कि महिलाओं की अवनति के कुछ पहलू विकास की प्रक्रिया की परिणति हैं। महिलाओं पर थोपी गई अशक्तताओं और असमानताओं को संपूर्ण सामाजिक संदर्भ में देखा गया, जिसमें शोषणात्मक व्यवस्था के अंतर्गत अन्य तबके भी उत्पीड़न का शिकार हैं। इन अध्ययनों ने लोगों की सोच को बदला, जिससे महिलाओं के स्थान को विकास की प्रक्रिया के संदर्भ में देखा जाने लगा। कल्याण नीतियों के लक्ष्य के रूप में देखे जाने के बजाए महिलाओं को विकास का *अत्यंत महत्वपूर्ण अंग* माना जा रहा है। महिलाओं की इस पुनर्व्याख्या को छठी पंच वर्षीय योजना (1980-85) में अभिव्यक्ति मिली। भारत के इतिहास में पहली बार इसमें महिला और विकास पर एक अलग अध्याय रखा गया था। इस परिवर्तन ने एकता के सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी के बिना भारत का भविष्य निर्माण अधूरा रहेगा। इससे यह बात भी पहली बार स्वीकार कर ली गई कि सामाजिक और आर्थिक बदलाव महिलाओं को सबसे ज्यादा प्रभावित करते हैं। महिलाओं को समाज के हाशिए से मुख्यधारा में लाने के लिए उनके विकास की दिशा में छठी पंच वर्षीय योजना ने तीन रणनीतियां अनिवार्य बताई: i) आर्थिक स्वतंत्रता, ii) शैक्षिक विकास और iii) स्वास्थ्य सुरक्षा और परिवार नियोजन।

24.4.4 पारिस्थितिकीय ह्रास

ग्रामीण समाज पर हुए अनेक अध्ययनों से हमें पता चलता है कि लड़की अक्सर घर के कामों में हाथ बंटाती हैं। गरीबी, पलायन और पर्यावरण के विनाश के चलते स्त्री पर जब काम का बोझ बढ़ जाता हैं तो इससे सबसे पहले मां और उसकी बेटी ही प्रभावित होती है। जीवनयापन के बुनियादी संसाधनों के ह्रास का सीधा असर लड़की की शिक्षा पर पड़ता है। परिवार में गरीबी बढ़ती है तो लड़की को ही सबसे पहले स्कूल से निकाला जाता है। इसे और स्पष्ट करने के लिए हम हिमालय के अंचल में बसे स्यूता नामक गांव का उदाहरण आपको दे रहे हैं। स्यूता उत्तरांचल राज्य के चमोली जिले में अलकनंदा के किनारे 1600 मीटर की ऊंचाई पर बसा गांव है। इस गांव की कहानी हमें बताती है कि जीवनयापन के बुनियादी संसाधनों के क्षरण से मां पर काम का बोक्ष किस क़दर बढ़ जाता है। इसके चलते बेटी को स्कूल छोड़ना पड़ता है, भले ही स्कूल जाना उसके लिए कितना ही सुगम क्यों न हो।

काम का बोझ मुख्यत: महिलाओं पर ही पड़ता है जो इस गांव की मुख्य श्रम शक्ति हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाओं को काफी कम उम्र से ही काम करना पड़ता है। पंद्रह वर्ष की होने तक वे अपने परिवार की आर्थिक गतिविधि में सक्रिय भूमिका निभाने लगती हैं। एक ओर सभी पुरुष काम नहीं करते मगर दूसरी ओर सभी महिलाएँ खेती-बाड़ी का काम करती हैं। महिलाएँ अपने घर में हर दिन कई घंटे काम करती हैं, पर गांव कृषि-व्यवस्था में पुरुष उनका बोझ बराबर नहीं बांटते। ठोस जमीन को खोदना, उसे हल जोतने के लायक बनाना, बीज बोना और फसल काटना, ये सारे काम महिलाएँ ही करती हैं। धान से भूसी अलग करने के लिए उसकी मढ़ाई करना, गोशाला से गोबर की खाद निकालकर दूर-दूर खेतों में डालना, घर के सारे काम-काज करना और पशुओं को चारा-पानी देना, उनकी देखभाल करना, ये सारे काम भी महिलाओं को ही करने होते हैं। यही नहीं जंगल से लकड़ी और घास के भारी गट्ठर लाने का काम भी वही करती है। काम के इस भारी बोझ और कठोर जीवन के कारण उनका स्वास्थ्य गिरा रहता है और अक्सर वे असमय मर जाती हैं। स्यूता में स्त्री और पुरुष की जीवन अवधि में भारी फर्क नजर आ जाता

है। जैसे, अध्ययन के दौरान गांव के सभी पुरुषों में नौ लोगों की उम्र 55 वर्ष से अधिक पाई गई, मगर औरतों में सिर्फ तीन ही इस उम्र तक पहुंच पाई थीं। औरत चाहे जवान हो या बूढ़ी या गर्भवती हो, उसे किसी भी दिन आराम नहीं मिलता।

24.5 बच्चों की स्थिति

बच्चों की हाशिए की स्थिति को जानने से पहले हमें भारत के कामगार बच्चों या बालश्रमिकों की श्रेणी को देखना होगा ताकि हम गरीबी, जबरन रोजगार और बच्चे की आयु के बीच होने वाली पारस्परिकक्रिया को समझ सकें। वयस्क श्रमिकों के रूप में कितने बच्चे काम कर रहे हैं, इसका पता लगाने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि अनेक बच्चे खेतों, घरों या कार्यस्थलों में अपने मां-बाप के साथ बेगार काम करते हैं। अनेक बच्चे हमारी अर्थ व्यवस्था के असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं जैसे, कालीन उद्योग, माचिस, पटाखा, बीड़ी, पीतल उद्योग, हीरा, कांच, होजरी, हथकरघा उद्योग, कशीदाकारी, चूड़ी और अन्य पारंपरिक हस्तशिल्प। बच्चे यूं तो अक्सर मजदूरी के लिए काम करते हैं मगर कभी-कभी वे अपने माता-पिता के सहायक के रूप में भी काम करते हैं। जैसे चाय बागानों में छोटे-छोटे बच्चे पत्तियां तोड़ने में अपनी मां का हाथ बंटाते हैं और 12 या 13 वर्ष का होने पर वे स्वतंत्र रूप से मजदूरी करने लगते हैं। ऐसे बच्चे भी हैं जो पशुओं को चराने के लिए जाते हैं और घर के लिए पीने का पानी और लकड़ी लाते हैं, खाना बनाते हैं, मगर इन बच्चों को हम श्रमिकों या कामगारों की श्रेणी में नहीं रखते। इन बच्चों की संख्या कितनी है, कोई नहीं जानता। बच्चों को कामगार या नौकरी पेशा करने वालों के श्रेणी में तभी रखा जाता है, जब वे अपने घर से बाहर पारिश्रमिक के लिए काम कर रहे हों।

पर जो बच्चे पारिश्रमिक के लिए काम कर रहे होते हैं, उन्हें भी मतगणना में शामिल नहीं किया जाता। ऐसे अनेक कार्यस्थल हैं जो मतगणना में प्रदान की जाने वाली सूचना में विरले ही दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए रेस्तरां, टी-स्टाल या ढाबों में काम करने वाले बच्चों और फेरी लगाने, अखबार बेचने, कबाड़ी का काम करने, जूता-पॉलिश का काम करने वाले बच्चों या भवन निर्माण, ईंट के भट्टों, पत्थर के खदानों में प्रशिक्षुओं के रूप में काम करने वाले बच्चों को रोजगार में लगा नहीं बताया जाता है। इस तरह की औपचारिक अदृश्यता आवारा बच्चों, विशेषकर भिक्षावृत्ति और वेश्यावृत्ति के दलदल में फंसे बच्चों के सिलसिले में भी देखने को मिलती है।

बड़ों के काम-धंधे या उनमें हाथ बंटाने वाले बच्चे अमूमन असाक्षर होते हैं। उनमें ज्यादातर बच्चे तो कभी स्कूल गए ही नहीं होते या फिर चौथी कक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ चुके होते हैं। शिक्षा अनिवार्य नहीं है और उसे अधिकार भी नहीं माना गया है, इसलिए बच्चे कच्ची उम्र से ही तरह-तरह के काम-धंधों में लग जाते हैं। पर खेती-बाड़ी को छोड़कर अन्य तरह काम करने वाले बच्चों को कौशल सीखने में लगे प्रशिक्षुओं का दर्जा नहीं दिया जा सकता। शहरों में बच्चे प्राय: पारिश्रमिक के लिए काम करते हैं। मगर किसी निपुण कारीगर के प्रशिक्षु के रूप में बच्चे की जो छवि हम सोचते हैं उसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है। बड़े-बूढ़ों के काम-धंधे करने के लिए बाध्य ये बच्चे जो भी कौशल अर्जित करते हैं वे ऐसे कौशल नहीं, जिन्हें वे अपने वयस्क जीवन में अर्जित नहीं कर सकते। अक्सर कहा जाता है कि कामगार बच्चे परिवार की आमदनी में योगदान करते हैं। मगर यह किसी को स्पष्ट मालूम नहीं है कि बच्चों के इस आर्थिक सहयोग के बिना ऐसे परिवार को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

24.5.1 बाल मजदूरी के उदाहरण

i) मदुरै के समीप स्थित शिवकाशी शायद भारत में बाल मजदूरी का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र

है, जहां बाल मजदूरों की संख्या विश्व में सबसे ज्यादा है। यहां बच्चे माचिस, पटाखा और छापाखानों जैसे उद्योगों में काम कर रहे हैं। लगभग 20 किलोमीटर की परिधि में बसे आस-पास के गांवों से बच्चों को बसों में भरकर शिवकाशी लाया जाता है। उन्हें सुबह के छः या सात बजे बसों में चढ़ाया जाता है, जिसके बाद वे शाम के छः या नौ बजे अपने घर लौटते हैं। एक बस में 150 से 200 बच्चों को ठूंस-ठूंसकर ले जाया जाता है। यूं तो बच्चे 12 घंटे काम करते हैं पर वे पूरे पंद्रह घंटे घर से बाहर रहते हैं। पंद्रह वर्ष से कम उम्र के 45,000 बच्चे शिवकाशी या आस-पास के कारखानों या अपने गांव के कुटीर उद्योगों में काम कर रहे हैं। इनमें एक तिहाई मजदूर लड़कियां हैं। हर गांव में एक एजेंट नियुक्त होता है, जो बच्चों की भर्ती करता है और बस पहुंचने से पहले रोज उन्हें जगाता है। इस दलाल को 150 रुपये की तनख्वाह मिलती है, हर बाल-मजदूर के भर्ती होने पर उसके मां-बाप को 200 रुपये पेशगी दिये जाते हैं, जिसे बाद में बच्चे की मजदूरी से काट लिया जाता है।

ii) उत्तर-प्रदेश के खुर्जा शहर की कुम्हारियों में काम करने वाले बच्चे ज्यादातर स्थानीय मजदूरों के बच्चे हैं। ज्यादातर बच्चे असाक्षर हैं, हालांकि कुछ चौथी कक्षा तक पढ़े हैं। आठ घंटे के रोजाना के श्रम के बदले में बच्चों को 150 रुपये महीना मिलता है। बड़े मजदूरों में अकुशल कारीगरों को 200 रुपये और कुशल कारीगरों को 400 रुपये मिलते हैं।

24.6 भारत में वृद्धजनों की स्थिति

बूढ़ों को भी हम हाशिए के लोगों में गिन सकते हैं क्योंकि वे भी उपेक्षित और वंचित हैं। बूढ़े लोग विभिन्न वर्गों और जातियों से संबंध रखते हैं और गांव और शहर दोनों जगह रहते हैं। इसलिए उनकी हाशिए की स्थिति को समान रूप से लेना उचित नहीं होगा। जनसंख्या वृद्धि और समाज व संबंधों के आधुनिकीकरण के कारण वृद्धजनों की स्थिति पर बड़ा जबर्दस्त दबाव पड़ा है। पारंपरिक परिवार में वृद्धजनों को विवेक और ज्ञान का भंडार माना जाता था। उनसे सभी महत्वपूर्ण मसलों पर सलाह ली जाती थी। पारंपरिक समाज में जो भूमिकाएं वृद्धजन निभाते थे वे अब परिवार से बाहर की संस्थाओं को चली गई हैं। इससे वृद्धजनों की उपयोगिता खत्म हो गई हैं। जहां कहीं भी बूढ़े लोगों को सहायता और सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है, वह उन्हें अपने परिवार के कमाऊ सदस्यों से नहीं मिल पाती है।

भारत जैसे देश में जहां बहुसंख्य जनता गरीबी के नीचे जी रही है, असंख्य व्यक्तियों के पास वृद्धावस्था में जीने के लिए कोई खास आमदनी नहीं होती। अनेक बूढ़ी महिलाएं सिर्फ गृहिणी ही रही होती हैं। इसी तरह कई बूढ़े लोग खेतिहर मजदूर या कम मजदूरी वाले काम-धंधों में लगे होते हैं। इनके अलावा ऐसे वृद्धजन भी हैं जो कभी संगठित क्षेत्र में कार्यरत थे और अब सेवानिवृत्त हो चुके हैं। उन्हें अब आधी से भी कम आमदनी में गुजारा करना पड़ता है। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि सेवा निवृत्ति के पांच वर्षों के भीतर ही अनेक लोग सारी जमा-पूंजी उड़ा चुके होते हैं और फिर अपने बच्चों या रिश्तेदारों पर आश्रित हो जाते हैं। पेंशन भोगी वृद्ध लोगों को हमेशा आर्थिक संकट झेलना पड़ता है क्योंकि उनकी आमदनी बढ़ती मंहगाई के कारण सिकुड़ती जाती है। यहाँ दशा तो उन वृद्ध लोगों की है, जो घर-परिवार वाले हैं। जरा उन वृद्ध लोगों की दशा की कल्पना कीजिए जो गरीब हैं और जिन्हें परिवार का कोई सहारा नहीं है।

वृद्ध लोग हाशिए के समूह का एक उदाहरण इसलिए भी हैं कि वृद्धावस्था अपने साथ सेहत और शारीरिक शक्ति में क्षरण लेकर आती है। अध्ययनों से पता चलता है कि कुछ रोग वृद्धों में आम तौर पर पाए जाते हैं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, बूढ़े लोगों को अपनी दिनचर्या के कामों को अंजाम देना उतना ही कठिन होता जाता हैं

मगर वृद्धों की समस्याओं को दूर करना कठिन नहीं है। इसके लिए एक ऐसी कार्य योजना बनाई जा सकती है जिससे परिवार अपने वृद्धजनों की ओर ध्यान दे सकें। इस योजना में वृद्धजनों को ऐसे सामाजिक क्रिया-कलापों में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है जिसे कमाऊ लोग अपनी व्यस्तता के कारण नहीं कर पाते हैं। इसके अलावा उन्हें अपने स्वास्थ्य के प्रति पूर्णत: जागरूक बनाया जा सकता है ताकि वे अपने स्वास्थ्य के अनुसार आवश्यक निरोधात्मक उपाय और अपनी जीवन शैली को उसी के अनुरूप ढाल सकें। इसके साथ-साथ वृद्धावस्था से जुड़ी नकारात्मक छवि व सोच को भी बदलने की जरूरत है। वृद्ध लोगों को यह नहीं सोचना चाहिए कि वृद्धावस्था का मतलब उनके लिए दूसरों पर निर्भर रहना है या वृद्धावस्था हमेशा बीमारी लेकर आती है और मानसिक और शारीरिक रूप से आदमी को कमजोर बनाती है।

बोध प्रश्न 2

1) भारत में महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए क्या उपाय किए गए हैं? पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

2) बाल श्रम से आप क्या समझते हैं? पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

24.6.1 वृद्धों की स्थिति के उदाहरण

एक वृद्ध दंपति, जिनकी उम्र क्रमश: 71 और 73 वर्ष है एक वृद्धाश्रम में रह रहे हैं। पति सेवानिवृत्त है। उसके पास एक फ्लैट था। जब उनका इकलौता बेटा एक दुर्घटना में चल बसा तो पति-पत्नी ने फैसला किया कि वे अपना शेष जीवन दूसरों की सेवा करते बिताएंगे। उन्होंने अपना फ्लैट बेचा और एक वृद्धाश्रम में दो कमरे का अपार्टमेंट खरीद लिया। वृद्धाश्रम उन्हें भोजन देता है जिसके लिए वे हर माह 450 रुपये प्रति व्यक्ति उसे अदा करते हैं। वृद्धाश्रम के बाहरी काम जैसे खरीदारी इत्यादि के अलावा पति आश्रम में रहने वाले अन्य वृद्धों को नहाने के लिए गर्म पानी पहुंचाने का काम भी करता है। पत्नी रसोई का काम संभालती है और भोजन की गुणवत्ता सुधारने में मदद करती है। इसके अलावा वह आश्रम के कर्मचारियो और अन्य वृद्धजनों की छोटी-मोटी जरूरतों का ध्यान भी रखती है। इस प्रकार पति-पत्नी व्यस्त रहते हैं और आश्रम वासियों की देखभाल अपने घर के लोगों की तरह करते हैं। दूसरों की सेवा करके उन्हें जो संतुष्टि प्राप्त होती हैं उससे वे अपने एकमात्र पुत्र की मृत्यु के शोक से भी उबर गए हैं।

दूसरा उदाहरण एक स्वर्ण पदक विजेता लेडी डॉक्टर का है जिसने कभी विवाह नहीं किया। मां-बाप की मृत्यु होने पर उसने अपने दो छोटे भाइयों और एक बहन को

पाला-पोसा, उन्हें पढ़ाया-लिखाया। उसे 2,000 रुपये की तनख्वाह मिलती थी। अपने भाई-बहन की देख-भाल के लिए उसने विवाह नहीं किया। पर जब भाई-बहन बड़े हो गए और पढ़-लिख गए तो उन्हें भला उसकी जरूरत क्यों होती। सो 58 वर्ष की आयु में जब वह सेवा निवृत्त हुई तो उन लोगों ने उसे घर से निकाल दिया। उसने सात वर्ष अपने आप जीने का प्रयास किया। मगर 65 की उम्र में वह उच्च रक्त चाप से पीड़ित हो गई। उसकी याददाश्त कमजोर हो गई और आत्मविश्वास भी टूट गया। आखिर में अपनी जमा-पूंजी लेकर वह एक वृद्धाश्रम में चली गई। लेकिन आज वह एकदम बदल गई है, 73 वर्ष की उम्र में आकर वह अपनी मेडिकल डिग्री और चिकित्सा कौशल पूरी तरह से भूल चुकी है। यह एक ऐसे उच्च शिक्षा और कौशल प्राप्त व्यक्ति का उदाहरण है जिसने अपने निजी जीवन को पूरी तरह से नजर अंदाज करके विवाह तक नहीं किया। आज उसके पास ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो उसे किसी भी तरह का सहारा दे सके। वह जब युवा थी तो उसने इस दिन के बारे में क्यों नहीं सोचा? कहने को उसके पास स्वर्ण-पदक है और जमा-पूंजी भी, मगर वह अपने जीवन में निपट अकेली और रिक्त है।

24.7 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि विभिन्न हाशिए के समूह किस तरह स्थिति का सामना कर रहे हैं जिसके लिए उन्हें सरकार और स्वयंसेवी संगठनों से सहायता मिल रही है। इन समूहों में सिर्फ अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लोग ही नहीं बल्कि महिलाएं, बच्चे और बूढ़े भी शामिल हैं। आशा है कि ये सभी हाशिए के लोग कम होते जाएंगे, जो वृहत्तर समाज के लिए श्रेयष्कर रहेगा।

24.8 शब्दावली

पारिस्थितिकीय : यह पर्यावरण में होने वाली प्राकृतिक क्रिया का चक्र है, जिसमें प्रकृति एक संतुलन बनाए रखती है। मनुष्य भी इस प्राकृतिक आवास का हिस्सा है और इसे जो कुछ भी होता है उसके लिए बराबर का भागीदार है।

समानता : सभी लोगों के साथ पूर्वाग्रह के बिना व्यवहार करना भले ही वे किसी धर्म, लिंग या जातीयता के हों।

न्याय : इसका आधार राज्य का कानून है जिसमें संविधान सभी को निष्पक्ष व्यवहार और शोषण से मुक्ति की गारंटी देता है।

स्थिति या हैसियत : यह किसी व्यक्ति या जनसमूह की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा का सूचक है। समाज में हर कोई व्यक्ति और समूह ऊंची हैसियत और प्रतिष्ठा हासिल करना चाहता है।

24.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

देसाई एन. और कृष्णराज, एम. (संपा) 1987, *वीमेन एंड सोसाइटी इन इंडिया,* नई दिल्ली, अजंता

फर्नांडीज, डब्लू. *एट आल.* 1988, *फॉरेस्ट्स, एनवाइरमेंट एंड ट्राइबल इकॉनमी: डिफॉरेस्टेशन, इम्पॉवरिशमेंट एंड मार्जिनलाइजेशन इन उड़ीसा,* नई दिल्ली इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट

कोहली, ए.एस., 1996, *सोशल सिचुएशन ऑव द एजेड इंन इंडिया,* दिल्ली, अमोल पब्लिकेशंस

कुलश्रेष्ठ, जे.सी. *चाइल्ड लेबर इन इंडिया,* दिल्ली, एशिया पब्लिशिंग हाउस

राम एन. 1995, *बियोंड अंबेडकर: एसेज ऑन दलित्स इन इंडिया,* अध्याय 7, 89 और 10, नई दिल्ली, हर आनंद पब्लिकेशंस

24.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अनुसूचित जातियों में निश्चय ही सामाजिक गतिशीलता रही है। साक्षरता दर और सरकारी पदों में नियुक्ति समेत सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में उनमें स्पष्ट वृद्धि हुई है। गरीबी भी उनमें कम हुई है। अपने अधिकारों के लिए अनुसूचित जातियां अब खुल कर बोल रही हैं। उनकी हाशिए की स्थिति और गतिशीलता में सुधार आया है। इन सब बदलावों का श्रेय फुले और अम्बेडकर जैसे चैतन्य समाज सुधारकों के प्रयासों को जाता है।

2) भारत सरकार स्वतंत्रता के बाद से ही आदिवासियों के विकास के प्रयास में लगी हुई है। सरकार उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में लाना चाहती है, उन्हें अपनी संस्कृति के संरक्षण के लिए स्वतंत्रता दे रही है और उनके कल्याण के लिए काम कर रही है। पर जनजातीय विकास के लिए जो भी परियोजनाएं चलाई गई हैं, वे अक्सर नुकसानदेह रही हैं। जैसे सिंचाई, खनन, जलविद्युत और औद्योगिक परियोजनाएं। बहरहाल शिक्षा के प्रसार से उनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ है।

बोध प्रश्न 2

1) भारतीय संविधान सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) समानता की गारंटी देता है। सरकार ने महिला कल्याण के लिए 1953 में समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की। विश्व में हुए नारी मुक्ति आंदोलन ने भारत पर भी प्रभाव डाला। संयुक्त राष्ट्र संघ महिला दशक 1975-85 ने भी महिलाओं की स्थिति से जुड़े अनेक मुद्दों को उठाया और उनके समाधान की दिशा में प्रयास किया।

2) बाल श्रम उसे कहते हैं जब छोटे नाबालिग बच्चों को काम-धंधों में लगा दिया जाता है, जब कि उन्हें स्कूल में पढ़ाई करनी चाहिए। उन्हें इसका भी ज्ञान नहीं रहता कि जो काम-धंधा वे कर रहे हैं वह उनके लिए कितना जोखिम भरा है। इसमें बच्चों को बहुत कम मजदूरी दी जाती है और उन्हें ऐसी स्थितियों में काम करना पड़ता है जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। अनेक बच्चे घरेलू नौकरों के रूप में या माचिस और पटाखा उद्योगों में काम कर रहे हैं जहां उन्हें हर दिन लंबे समय तक काप करना पड़ता है। शिवकाशी बाल मजदूरी का एक उदाहरण जहां बच्चे कठोर और दयनीय स्थिति में काम कर रहे हैं।